ISSN-2348-3660

कलाक्षसुधा

जनवरी-जून 2026
Peer Reviewed

प्रदर्शकारी कलाओं की त्रैमासिक पत्रिका

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा
सरस्वती सम्मान प्राप्त पत्रिका

संयुक्तांक
51, 52
जनवरी-जून 2026

प्रचलित-अप्रचलित : राग-प्रसंग

कलावसुधा

प्रदर्शकारी कलाओं की त्रैमासिक पत्रिका

■ वर्ष : 26 ■ अंक ■संयुक्तांक 51-52 ■ जनवरी–जून, 2026

ISSN-2348-3660

प्रकाशन स्थापना के 26 वर्ष

Peer Reviewed

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा सरस्वती सम्मान प्राप्त पत्रिका

सलाहकार मण्डल

1. पद्मश्री डॉ. पुरू दाधीच
2. पद्मश्री राम दयाल शर्मा
3. डॉ. श्याम सुन्दर दुबे
4. पद्मश्री प्रो. ऋत्विक सान्याल
5. पद्मश्री रामचन्द्र पुलावर
6. प्रो. सुरेन्द्र दुबे
7. प्रो. राधेश्याम जायसवाल
8. प्रो. सुनीरा कासलीवाल व्यास
9. प्रो. कुमकुम धर

समीक्षा मण्डल

1. प्रो. के. शशी कुमार
2. प्रो. संगीता पण्डित
3. प्रो. राजेश शाह
4. प्रो. उषा सिन्हा
5. प्रो. अनिल बिहारी ब्योहार
6. श्रीमती मन्जरी सिन्हा
7. डॉ. दीक्षा नागर
8. शशांक दुबे
9. कुमार अनुपम
10. डॉ. उमेश चन्द्र शर्मा

सम्पादकीय मण्डल

1. डॉ. चेतना ज्योतिष ब्योहार
2. प्रो. ऋचा नागर
3. डॉ. अरविन्द कुमार
4. डॉ. वीरेन्द्र निर्झर
5. भारत रत्न भार्गव
6. डॉ. गौतम चटर्जी
7. प्रो. डॉ. चन्द्रशेखर कणसे
8. प्रो. डॉ. सुबाष चन्द्र सिंह कुशवाहा
9. डॉ. अपूर्वा अवस्थी
10. डॉ. जय शंकर राय

प्रधान सम्पादक	सम्पादक	सह–सम्पादक
शाखा बंद्योपाध्याय	डॉ. उषा बनर्जी	डॉ. ज्योति सिंह

सम्पादकीय ठिकाना :

कला वसुधा 'सांझी–प्रिया' बी–8, डिफेन्स कालोनी, तेलीबाग, लखनऊ – 226029

R.N.I. No. : UPHIN/2001/6035

ISSN-2348-3660

वेबसाइट : https://www.kalavasudha.com

ई–मेल : **kalavasudha01@gmail.com**

मो. : **8052557608** (प्रधान संपादक)

मो. : **9889835202** (संपादक)

मो. : **8009800436** (सह–संपादक)

''कला वसुधा का वेब अंक आप **Not Nul (https://www.notnul.com)** पर पढ़ सकते हैं।''

कलावसुधा
प्रदर्शकारी कलाओं की त्रैमासिक पत्रिका
■ वर्ष : 26 अंक : संयुक्तांक 51-52 ■ जनवरी–जून, 2026
ISSN-2348-3660
Peer Reviewed
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा सरस्वती सम्मान प्राप्त पत्रिका

सिलसिला.....

राग प्रसंग

	कहना–सुनना		4
1.	डागुरबानी परम्परा के प्रचलित एवम् अप्रचलित रागों का पुनरवलोकन	–पण्डित ऋत्विक सान्याल	8
2.	''नेपथ्य में जाती राग–रागनियाँ : लोक का संदर्भ''	–डॉ. श्याम सुन्दर दुबे	12
3.	रागों का वैदिक तात्विक दिग्दर्शन	–डा. चंद्रिका प्रसाद दीक्षित ललित	14
4.	''कृष्णानन्द व्यासरचित 'राग कल्पद्रुम' ग्रंथ का परिचय एवं उसका राग–रागिणी वर्गीकरण''	–प्रो. राधेश्याम जायसवाल	16
5.	आधुनिक सदारंग, संगीताचार्य स्व. पंडित शंकरराव गणेश व्यास की अमर रचना राग 'भवानी'	–द्वारा–डॉ. सुनीरा कासलीवाल व्यास	20
6.	जीवन उजास का संधान है दुर्लभ राग	–डा. राजेश कुमार व्यास	22
7.	अप्रचलित और प्रचलित राग एवं उनका मनोवैज्ञानिक अध्ययन	–डॉ. वीरेन्द्र कुमार चन्द्रसखी	24
8.	'भावरंग' की रचनाओं में राग–नामों के सार्थक संकेत	–डा. स्वर वन्दना शर्मा	27
9.	वर्तमान समय में राग और रागदारी : एक विवेचन	–प्रोफेसर डा. मधु भट्ट तैलंग	29
10.	रागमाला चित्रों का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व	–डॉ. महेन्द्र कुमार शर्मा 'सुमहेन्द्र'	33
11.	'रंजयतीति रागः'	–डॉ. राजेंद्र रंजन चतुर्वेदी	45
12.	राग की ऋतुएं और कलाकारों की सौन्दर्यबुद्धि	–डॉ. गौतम चटर्जी	47
13.	थाट–राग पद्धति	–डा. राजेन्द्र कृष्ण अग्रवाल 'रजक'	49
14.	रबीन्द्र संगीत में राग रागिनी – एक अनन्य प्रयोग	–जयश्री पुरवार	51
15.	संगीत में रागतत्व का औचित्व	–डॉ. सुबाष चन्द सिंह कुशवाहा	54
16.	राग और रागों का संसार	–डा. देवेन्द्र वर्मा 'ब्रजरंग'	59
17.	साक्षात्कार : डा. ऋचा ज्योतिन्द्र ठाकुर ..... समर्पित संगीताचार्य से ...	–डा. रजनी नेलसन	64
18.	तुलसीदास के गीतिकाव्य में प्रचलित–अप्रचलित राग : एक अध्ययन	–डॉ. अरविन्द कुमार	66
19.	फिल्म गीतों में राग–रागिनियां एक भैरवी हजार तराने	–शशांक दुबे	69
20.	हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में रागों की संकल्पना और सृजनात्मक प्रवृत्तियाँ	–डॉ. सृष्टी माथुर	74
21.	कबीर के पदों में प्रचलित राग–रागिनियाँ	–प्रो. किरण शर्मा	76
22.	राग–प्रचलित और अप्रचलित	–आभा सक्सेना	81
23.	रामपुर (सदारंग) परम्परा के प्रचलित व अप्रचलित राग	–डॉ. सरिता पाठक यजुर्वेदी	103
24.	राग–संवाद	–डॉ. उषा बनर्जी	114
25.	भैरव अंग तथा उसके विभिन्न प्रकारों का विवरण	–डॉ. अरविन्द कुमार पाण्डेय	120
26.	भारतीय फिल्म संगीत में रागों का वैभव	–चन्द्र मोहन	122
27.	उत्तराखंड के परिपेक्ष्य में लोक परक व शास्त्रपरक प्रचलित और अप्रचलित राग	–बृजमोहन जोशी	125
28.	"राग विवेचन और रागांग पद्धति"	–डा. जयशंकर	130
29.	अप्रचलित रागों का निर्माण	–चिन्मय नेहा विबान पारासर	135
30.	अप्रचलित रागों का संरक्षण, पुनरुत्थान और समकालीन प्रासंगिकता	–मंगल सिंह वर्मा	137
31.	ओडिसी संगीत की राग परंपरा : एक पाठ्य एवं सैद्धांतिक पुनर्मूल्यांकन	–डा. ज्योति सिंह	140
32.	आर के नारायण की एक कहानी है सर्पगान	–बालकीति	142
33.	शास्त्रीय संगीत में प्रचलित एवं अप्रचलित राग	–डॉ. मनीषा सक्सेना	152
34.	भोजपुरी लोक संगीत की राग परम्परा	–डा. अर्चना श्रीवास्तव	155
35.	प्राचीन मूर्छनाओं की जीवित परंपरा : पंडित फिरोज फ्रामजी और राग–विज्ञान	–डा. दिव्या श्रीवास्तव	157

36.	रागांगो का मनोहारी नर्तक ''नट'' एक अप्रचलित रागांगा	–डा. ज्योति मिश्रा	166
37.	अयोध्या के आध्यात्मिक संगीत में प्रचलित या अप्रचलित राग रागिनियों का प्रयोग	–शोधार्थी आलोक कुमार	169
38.	''राग'' ''राग सृजन से रंग सृजन तक''	–रवि चन्द्र गोस्वामी	170
39.	भारतीय चित्रकला और राग परम्परा : रागमाला चित्रण के सन्दर्भ में प्रस्तावना	–कुशाग्र जैन	172
40.	प्रचलित एवं अप्रचलित रागः (पं. एस.एन. रातनजंकर के संदर्भ में)	–डॉ. सारिका श्रीवास्तव	177
41.	अवधी लोक संगीत : प्रचलित एवं अप्रचलित रागों की अनोखी दुनिया और उनकी प्रासंगिकता	–डॉ. शिखा भदौरिया	179
42.	प्राकृत साहित्य में राग	–डॉं. पत्रिका जैन, लखनऊ	182
43.	ख्याल के घरानों में राग गायकी : एक अध्ययन	–अलंकृता रॉय, डॉ. ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय	183
44.	भारतीय राग परंपरा में अप्रचलित राग	–डॉ. निष्ठा शर्मा	190
45.	संगीत में राग साधना–एक यौगिक दृष्टि	–डॉ. ज्योति शुक्ला	202
46.	भारतीय संगीत में प्रचलित और अप्रचलित रागों का संगीत शास्त्र में स्थान	–डॉ. शालिनी शाहू	203
47.	भारतीय संगीत के अप्रचलित राग : परंपरा, संरचना, सौंदर्य और पुनर्जीवन	–रमेश तैलंग	205
48.	सिनेमा संगीत में पंडित रविशंकर जी द्वारा प्रयोग किए गए प्रचलित अप्रचलित रागों का अध्ययन	–अर्चना निगम	208
49.	Popular & Non-Popular Ragas in Carnatic Music	–Dr. K. Sashi Kumar	211
50.	Chapter II Ragas Obtained or Derived Mathematically From the 72 Thatas	–Dr. V.S. Nigam	214
51.	Chapter IV The Ancient Raga-Ragini System		
52.	An Odessey of Ragas	–Dr. Sanghamitra Chakravarty	221
53.	Necessity of Raga in Dance	–Write up of Dr. Keya Chanda	225
54.	**पुस्तक–समीक्षा**		
1.	गायनाचार्य पण्डित नारायण राव व्यास स्मृति ग्रंथ''–सम्पादिका–प्रो. सुनीरा कासलीवाल व्यास समीक्षक : डा. उषा बनर्जी		226
2.	राधेश्याम : नाटक/फिल्म के अभिनय–सूत्र–आरती		230
3.	''कथक का सौंदर्य 'गुरु मुख से'' ले. डा. चित्रा शर्मा–आलोक कुमार		232
4.	समीक्षा लोक कलाओं पर नवीन विमर्श–समीक्षक अमित काम		234
5.	रंगमंच के सामाजिक सरोकार : अनीश अंकुर–जितेन्द्र कुमार सिंह		236
	प्रतिक्रिया		237

प्रधान सम्पादक
शाखा बंद्योपाध्याय

सम्पादक
डॉ. उषा बनर्जी

सह–सम्पादक
डॉ. ज्योति सिंह

विधि परामर्शी
रमेश चन्द्र पाण्डेय
अजीत श्रीवास्तव

आवरण चित्र
चन्द्र मोहन

1140, सेक्टर–21
पॉकेट 'सी' (नियर एच.यू.डी.ए. सेक्टर–21 मार्केट), गुरुग्राम–122016 (हरयाणा)
मो. : 9811467241

व्यवस्था सहयोगी
देवाशीष,
पर्ण शिशिर,
ऋचा,
हरीपाल
राहुल
सोनू

संगीत नाटक अकादमी नई दिल्ली द्वारा आंशिक आर्थिक सहयोग प्राप्त

सर्वाधिकार सुरक्षित
पत्रिका के किसी भी अंश का मंचन प्रकाशन अथवा प्रसारण करने से पूर्व सम्पादक की लिखित अनुमति अनिवार्य है।

पत्रिका से जुड़े सभी व्यक्ति कला सेवा हेतु अवैतनिक एवं अव्यवसायिक हैं।

न्याय क्षेत्र लखनऊ

इस अंक का मूल्य **350**/–

सम्पादकीय ठिकाना : कला वसुधा 'सांझी–प्रिया' बी–**8,** डिफेन्स कालोनी, तेलीबाग, लखनऊ – **226029**
वेबसाइट : **www.kalavasudha.com** ई–मेल : **kalavasudha01@gmail.com**
मो. : **8052557608, 9889835202**

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं सम्पादक डॉ. उषा बनर्जी द्वारा मुद्रक : प्रिन्टआर्ट ऑफसेट, 33 कैण्ट रोड, लखनऊ RNI - Regd. PRESS/2024/624/00002209
मो. : 9839011924 से मुद्रित तथा 'सांझी–प्रिया' बी–**8,** डिफेन्स कालोनी, तेलीबाग लखनऊ – **226029** से प्रकाशित।

प्रकाशित रचनाओं में विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे 'कला वसुधा' और सम्पादक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

कहना–सुनना

सभी सहृदय एवं सुधी पाठक गण !

सादर एवं स्निग्ध नमस्कार,

जैसा कि आप सभी को ज्ञात है कि ''कला वसुधा'' प्रदर्शनकारी त्रैमासिक पत्रिका के अनवरत 25वें वर्ष के अंतिम अंकों में दो रासलीला प्रसंग (प्रथम) एवं रासलीला प्रसंग (द्वितीय) प्रकाशित किये गये जिनका लोकार्पण श्री लीला–पुरुषोत्तम कृष्ण की रसमयी स्थली 'वृन्दावन' में हुआ। कोई भी सारगर्भित कार्य के लिये सच पूछो तो करने वाले का हृदय और मन दोनों को एक साथ 'वृन्दावन' होना ही होता है जो सकारात्मक एवं स्नेहिल चिंतन की धरा तैयार करता है। तभी ऐसे काम को करने के लिये हम ''अधिकारी'' हो पाते हैं। दूसरे अपने कार्य के 'विषय' के प्रति एकदम स्पष्ट होना अनिवार्य है जो राधागोबिन्द की तरह सकारात्मक, विकासोन्मुखी एवं नितनवोन्मेषी प्रतिभामय रस स्वरूप होना होता है। तीसरा तथ्य उस काम को करने का 'प्रयोजन' जो विषय से सीधा जुड़ने के कारण उसकी सिद्धि में सहायक होता है। उससे ही कार्य के प्रति मन में दृढ़ता आती है और अन्त में इन सभी में निहित आपसी तालमेल बनाने की आवश्यकता और रसिक लेखक एवं पाठकों का इन सबके प्रति हृदय से 'सम्बन्ध' बहुत महत्व रखता है। रासलीला के दोनों प्रसंग कलावसुधा की नींव में निहित चिंतन का विमर्श रूप कहे जा सकते हैं। शायद जब हमने कला वसुधा का प्रथम अंक आरंभ किया था तबसे अब तक के 25 वर्षों की यात्रा के अंतराल में यही चिंतन हम दोनों के हृदय में कहीं न कहीं प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अवश्य रहा है जिसका परिणाम यह रास लीला प्रसंग आकार लिये हैं और अब इसी तरह इस प्रवाह को आगे बढ़ाते हुए एक नवीन प्रसंग आप सभी के समक्ष आ रहा है जो संगीत के ''प्रचिलित एवं अप्रचिलित रागों'' की आभा बिखेर रहा है। हमारी तंत्र की उक्ति अनुबन्ध–चतुष्टय–1. अधिकारी 2. विषय 3. प्रयोजन 4. सम्बन्ध, यहाँ भी प्रासंगिक है। या यों कहिये किसी भी विषय के अध्ययन में ये चारों अनुबन्ध मन में धारण करें तो ही हम कार्य आरम्भ करते हैं तभी कार्य की सार्थक परिणिति हो पाती है। हमारे सभी विद्वान लेखक एवं पाठक अपने आप में विषय ज्ञान के समर्थ–अधिकारी वर्ग में आते हैं। वहीं ''विषय'' संगीत का प्राण स्वरूप ''राग के प्रचिलित अप्रचिलित रूप'' स्पष्ट हैं। 'प्रयोजन प्राचीन परम्परा से आज तक चलती आ रही इन रागों की यात्रा का विश्लेषण हमारे सभी लेखक वृन्द पूरा कर रहे हैं और सभी अपने विषय से अंतरंग ''सम्बन्ध'' रखते हुए इस अंक को सम्पूर्णता प्रदान कर रहे हैं जिससे हम सबको उनके अनमोल अध्ययन एवं चिंतन की धारा को आगे बढ़ाने एवं सभी तक पहुँचाने का संयोग भी मिलेगा।

''राग'' शब्द 'रञ्ज' धातु में 'धञ्' प्रत्यय लगने से बना है। 'रञ्ज' धातु में 'रंगना', 'मनोरंजन' करना, राग, रंजकता, उपरंजकता आदि अनेकों अर्थ संयुक्त हैं। संगीत में रंजकता को धारण करने वाले तत्व–स्वर और राग हैं जो रंजकता उत्पन्न करते हैं जिनमें प्रयुक्त तत्व–वर्ण, अलंकार, गमक एवं काकु आदि हैं। इसीलिये राग को ''स्वर वर्ण विभूषितः'' कहा गया है।

पण्डित भातखण्डे जी ने राग सम्बन्धी सभी परिभाषाओं के सारांश रूप यह परिभाषा दी हैः–

''योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वर वर्णविभूषितः।
रंजको जनचित्तानां स रागः कथ्यते (कथितो) बुधैः''

(लक्ष्य संगीत पृ. 174)

अर्थात् वह विशेष ध्वनि जो स्वर वर्णों से बिभूषित हो और राग के ग्रह अंश आदि दस लक्षणों से युक्त हो तथा जिसमें मनुष्यों के चित्त को रंगने या रंजन करने की क्षमता हो उसे 'राग' कहते हैं। राग की इस परिभाषा में ध्वनि विशेष और वर्ण यह दो विशेष तत्व प्रधान कहे गये हैं। इसमें ध्वनि विशेष अर्थात् राग की अपनी एक विशेष ''स्वर–संगति'' जिससे वह राग पहचाना जाता है। जिसे राग–काकु भी कह सकते हैं। अर्थात् राग की अपनी छाया या चलन को ''राग–काकु'' कहते हैं जैसे–पूरे शरीर में व्यक्ति चेहरे से पहचाना जाता है। उसी प्रकार राग की स्वर–संगति विशेष ही राग की प्रकृति और उसकी चलन को स्पष्ट करती है। दूसरा तत्व 'वर्ण' है जो गाने की क्रिया जैसे–स्थायी, आरोही, अवरोही एवं संचारी ये चार वर्ण होते हैं। राग में किन–किन वर्णों का विशेष प्रयोग किया जाता है और विशेष प्रकार से किया जाता है। यह सब राग के नियमों पर निर्भर करता है। कुछ राग आरोह प्रधान तो कुछ अवरोह प्रधान होते हैं। कुछ रागों में संचारी वर्णों की प्रधानता होती है। इन्हीं स्वरों के क्रम भेद से रागों की सृष्टि होती है। इसमें स्वरों का प्रयोग किस क्रम भेद से हो, यही राग का मूल प्राण है।

एक अन्य परिभाषा के अनुसार–''राग वह है जो किसी विशेष भावना से मन को रंग देता है। ये सरल शब्दों में सुरों और भावों का संग्रह है जो श्रोता के हृदय में अपने भाव को प्रतिबिम्बित करने के लिये गाया जाता है। कुल मिलाकर संगीत में राग रंजक भावों को अभिव्यक्त करने वाले स्वर समूह को राग कहते है जिसे अभिव्यक्त करने के लिये अनेकों नियम, लक्षण एवं पद्धति है। यह एक विशेष मनोभाव को इंगित करता है पर संगीत में तो राग द्वारा सभी मनोभावों को अभिव्यक्त कर सभी का रंजन होता है।

सर्व प्रथम संगीत में राग के इस विशेष अर्थ में प्रयोग का उल्लेख मतंग मुनि द्वारा रचित 'बृहद्देशी' ग्रंथ में मिलता है। उससे पूर्व ''जाति–गायन'' होता था और जातियाँ (संगीत के संदर्भ में आचार्य भरत ने अपने ग्रंथ 'नाट्य–शास्त्र' में उल्लेख किया है) (मार्ग देशी) नींव भी यहीं से आरम्भ हुई ऐसा प्रतीत होता है।

शारंगदेव के अनुसार (संगीत रत्नाकर ग्रंथ में) ''राग स्वर वर्ण से विभूषित एक ऐसी ध्वनि है जो मनुष्य के मन का रंजन करती है। इसमें राग के दस लक्षणों में आबद्ध स्वरों का एक ऐसा सुन्दर संयोजन होता है जो कानों को प्रिय लगे और हृदय को आनन्द विभोर करे, जिसमें रंजकता एक आवश्यक और महत्वपूर्ण तत्व है। इसमें सर्वाधिक प्राचीन राग वर्गीकरण 'दसविध राग वर्गीकरण' का वर्णन है, जिसके अन्तर्गत प्रचिलित और अप्रचिलित कुल रागों की संख्या 264 का उल्लेख भी किया गया है।

'राग' शब्द का आज के प्रचिलित 'राग' के अर्थ में प्रयोग आचार्य भरत के नाट्य शास्त्र में नहीं हुआ है। आचार्य मतंग ने अपने ग्रंथ 'बृहद्देशी' में अपने वर्तमान समय में व्यवहृत अर्थ में 'राग' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया है। यहाँ ग्राम राग के ध्यान नहीं दिये गये हैं। दुर्भाग्य से देशी रागों के निरूपण वाला अंश अनुपलब्ध है। किन्तु मंगलाचरण के श्लोक के आधार पर इतना कह पाते हैं कि ''बृहद्देशी'' में रागों के ध्यान दिये गये हैं जो कि तांत्रिक पद्धति के थे। अन्य दो तांत्रिक पद्धति के रागध्यान देने वाले प्रमुख ग्रंथ थे–1. वाचनाचार्य सुधाकलश का ''संगीतोपनिषद सारोद्धार'' और 2. महाराणा कुम्भा का ग्रंथ संगीत राज''। इसके उपरान्त छैः ग्रंथ संस्कृत में तथा हिन्दी में तीन प्रमुख ग्रंथों के नाम इस प्रकार है जिनमें रागों के ध्यान दिये गये हैं–1. श्री कण्ठ का ग्रंथ ''रस कौमुदी'' (संस्कृत) 2. पुण्डरीक विट्ठल का ग्रंथ ''राग माला'' (संस्कृत) 3. शुभंकर का ग्रंथ ''संगीत दामोदर'' (संस्कृत) 4. सोमनाथ का ग्रंथ ''राग विवोध'' (संस्कृत) 5. दामोदर का ग्रंथ ''संगीत दर्पण'' (संस्कृत) 6. जीवराज दीक्षित का ग्रंथ ''रागमाला'' (संस्कृत) 7. पुरुषोत्तम का ग्रंथ ''राग विवेक'' (हिन्दी) 8. लछिमन दास का ग्रंथ ''राग माला'' (हिन्दी) 9. शिवराम का ग्रंथ ''राग रस सार'' (हिन्दी)।

यहाँ रागों का ध्यान से जुड़े ग्रंथों और इस परम्परा का उल्लेख इसलिये किया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि राग का हमारे मनोभावों को अभिव्यक्त करने के लिये शास्त्रों में कितनी गम्भीरता से चिंतन किया गया है जो कि संगीत, काव्य एवं चित्रकला की त्रिवेणी बनकर आज हमारे समक्ष इनके मनोवैज्ञानिक चिंतन पर तो प्रकाश डालती ही है साथ ही ये राग हमारे आध्यात्मिक चिंतन में कितने सहायक हैं यह भी स्पष्ट होता है।

ये राग कलाकार की वो सौन्दर्यानुभूति से निकले कूटस्थ प्रयोग हैं जिनसे रस प्रवाहित होकर सभी का सिर्फ मनोरंजन ही नहीं बल्कि दैवी आनन्द की अद्वितीय आभा का स्पर्श भी कराते हैं जिसके आस्वादन के लिये सभी संगीत रसिक हमेशा उत्सुक रहते हैं। इसी रसात्मक अभिव्यक्ति के आनन्द को प्रस्तुत करने के लिये प्राचीन काल से ही 'राग–ध्यान' की परम्परा प्रवाहित हुई ''रागध्यान'' परम्परा का प्रभाव राग वर्गीकरण की मध्यकालीन प्रशाखा ''राग–रागिनी'' वर्गीकरण भी प्रभावित हुई जिसमें रागों की मनोवृत्ति जन्य प्रभाव की अभिव्यक्ति ध्वनित होती है। यह रागों से रस और आनन्दाभूति कराने के लिये कलाकार रागों के लक्षणों और उसकी आत्मा उसके ध्यान पर केन्द्रित होकर उन्हें अपने माध्यम से अभिव्यक्त करता है। इन सबका समुचित औचित्यपूर्ण प्रयोग राग को रस की पराकाष्ठा तक ले जाता है।

श्रोता और कलाकार के मध्य भाव साम्य स्थापित करने का कोई साधन न होने पर ''रागध्यान'' ही इस समस्या का अत्यन्त वैज्ञानिक समाधान था। गायक राग द्वारा जिस किसी भाव विशेष को प्रस्तुत करना चाहता था उसकी सामान्य रूप रेखा राग–ध्यान द्वारा कह देता था जिससे श्रोताओं को अनुभूति के लिये एक विशेष प्रारूप मिल जाता है। संगीतज्ञ राग–ध्यानों के माध्यम से अपने भावों को स्पष्ट स्वरूप देकर राग गाने लगे। आगे चलकर विशेष रूप से मध्यकाल में राग ध्यान का निर्माण संगीतज्ञों के साथ–साथ कवियों द्वारा भी होने लगा जिससे उसमें मनमाना पन भी आया।

एक ओर पौरूषता गाम्भीर्य प्रौढ़ता तथा दूसरी ओर कोमलता सरसता, तरलता एवं स्निग्धता आदि की अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिये सूक्ष्म को स्थूल तथा अग्राह्य को गाह्य बनाने के लिये पौरूषता एवं स्त्रीत्व के सर्वग्राह्य चिरंतन प्रतीकों को ग्रहण करना भारतीय परम्परा का एक विशिष्ट अंग है। राग रागिनी वर्गीकरण में भी इसी परम्परा को ग्रहण किया गया। सुधाकलश ने रागिनी संज्ञा देने के स्थान पर 'भाषा' संज्ञा का प्रयोग किया है। मतंग के समय से ही संगीत नाट्य से स्वतंत्र होने लगा था। अतः राग वर्गीकरण में (दशविधराग वर्गीकरण) ''ग्राम राग'' पुल्लिंग और भाषा राग स्त्रीलिंग रागों में कहे जाने लगे। राग–रागिनी वर्गीकरण का उद्भव और विकास इसी चित्तवृत्ति के फलस्वरूप पुरूषत्व और स्त्रीत्व के प्रतीकों पर आश्रित रहा है। और राग ध्यान परम्परा भी इन्हीं प्रतीकों के आधार पर विकसित हुई। साथ ही रागों के ध्यानों को कविता में ढालने तथा चित्रकला के माध्यम से उन्हें चित्रित कर उसे और भी स्थूल रूप में प्रस्तुत किया गया इस प्रकार राग ध्यान, राग रागिनी वर्गीकरण तथा राग चित्रण इन तीनों धाराओं में क्रमशः संगीत साहित्य एवं चित्रकला के आश्रय में सूक्ष्म से स्थूल रूप पल्लवित हुआ।

रागों के प्रसंग में ध्यान की सार्थकता पर विचार करें तो सबसे पहले ''ध्यान'' शब्द को संक्षेप में समझ लें। ''ध्यान'' का अर्थ है ''अपने चित्त को अपने इष्ट में तदाकार करना'' किसी भी राग की मूल प्रवृत्ति के अनुसार उसकी आकृति के मानसिक विग्रह के साथ भाव तादात्म्य स्थापित करना या उसे अनुभव करना ''राग ध्यान'' है। संगीत के क्षेत्र में यह आवश्यकता उस युग में अनुभव हुई जब संगीत नाट्य से स्वतंत्र होकर अपना स्वतंत्र अस्तित्व प्रकट करने में लगा था विशेष रूप से भारत का संगीत आध्यात्मिक पृष्ठभूमि में ही पला है इसीलिये वाग्येयकारों ने देव–ध्यान, छन्द–ध्यान, ताल–ध्यान, के साथ–साथ राग–ध्यानों की भी रचना की इसके अतिरिक्त मतंग के समय (लगभग सातवीं आठवीं शताब्दी) से ही तांत्रिक प्रभाव की एक लहर उठी जिसमें बिना ध्यान के कोई चिंतन पूर्ण ही नहीं होता था। इसी तांत्रिक विचार धारा का प्रभाव में मतंग ने तांत्रिक राग–ध्यान लिखे ऐसा महाराणा कुम्भा के ग्रंथ ''संगीत राज'' से अवगत होता है। राग ध्यानों के प्रमुख देव शिव, विष्णू, दुर्गा, एवं काली आदि रहे। इन सभी देवी–देवताओं में उद्धत और सुकुमार भाव ही प्रमुख रूप से दिखाई दिये। इन्हीं से श्रृंगार एवं वीर रस की अभिव्यक्ति की गई। भयानक विभत्स एवं रौद्र रसों का प्रयोग आंशिक रूप से ही दिखाई दिया क्योंकि ये रस बिना परिस्थिति विशेष के अभिव्यक्त ही नहीं किये जा सकते।

राग–ध्यानों के शैव एवं वैष्णव दो सम्प्रदाय के साथ–साथ शास्त्रकारों ने इनके दो स्वरूप भी बताये हैं–1. नादमयी एवं 2. भावमयी। नादमयी स्वरूप उसका शरीर है तो भावमयी रूप उस शरीर में रहने वाली आत्मा या उसका देवता। उपासना के देवता के लिये आवाहन एवं ध्यान करते हैं और उस ध्यान का बीजमंत्र होता है जो उस देवता के आवाहन में सहायक होता है और उसी के सहारे उस देवता का ध्यान किया जाता है। प्रत्येक राग एक विशेष मनोभाव का प्रतीक है, जिससे राग

की प्रकृति मूर्तिमान हो उठती है। राग में लगने वाले स्वरों से उसके नादमयी कलेवर की रचना होती है तथा राग में अभिव्यक्त भाव उस नादमयी शरीर की आत्मा है और वही राग का देवमय स्वरूप है। राग के ध्यान का तात्पर्य यह कि राग में राग की प्रकृति या उसके देवमय रूप के चित्र को इस तरह समाहित किया जाय कि वह नादमयी रूप में उतर आये। इस प्रक्रिया का मूल उद्देश्य राग को अलौकिक एवं आध्यात्मिक आनन्दवर्धक शक्ति से सम्बन्धित करना तथा उसे सजीव बनाना है।

रस ही राग की आत्मा एवं उसका देवमय रूप है। राग में रस तत्व विशेष अनुभूति मात्र है, जिसका कोई निश्चित आकार नहीं है। जैसे–भगवत तत्व रस की ही तरह निराकार होते हुए भी आनन्द स्वरूप है, उसमें मन समाहित करने के लिये जिस प्रकर स्थूल आकार की आवश्यकता पड़ने पर उस आनन्द स्वरूप की अपनी भावानुसार मूर्ति की पूजा की जाती है, उसी प्रकार राग रस में डूबने के लिये स्थूल अवलम्ब की आवश्यकता पड़ने पर इन रागों के देवमय स्वरूपों की जरूरत पड़ी जिन पर आधारित रागध्यान लिखे गये और इन्हीं के सहारे राग के देवमय रूपों को एक निश्चित रूप दिया गया।

''ध्यान'' शब्द दो अर्थों में देखा जा सकता है–प्रथम चित्त को समाहित करने की प्रक्रिया तथा दूसरा वह साधन जिसके द्वारा ध्यान समाहित करने की प्रक्रिया हो सके। संगीत में ध्यान इन्हीं दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार जो ध्यान लिखें गये हैं उनमें अपना चित्त समाहित करना ध्यान है, साथ ही वे चित्त को समाहित करने का साधन भी हैं। इनमें राग का वर्णित रूप भी ध्यान की प्रक्रिया के लिये अवलम्ब बन जाता है।

रागों का जन्म जातियों से होने के कारण रागों के लक्षण भी लगभग वही हैं जो जातियों के थे। कल्लिनाथ के अनुसार मतंग ने रागों के दस लक्षण कहे हैं–यथा 1. ग्रह 2. अंश 3. न्यास 4. अपन्यास 5. अल्पत्व 6. बहुत्व 7. औडव 8. षाडव 9. तार 10. मंद्र। इन दस लक्षणों को संगीत रत्नाकर में कहा गया है। (सं.र.पृ.2, 32–33)

ये सभी लक्षण संक्षेप में इस प्रकार हैं–

1. **ग्रह–**''ग्रह'' का अर्थ है 'ग्रहण करना''। राग के आरम्भ करने का स्वर ''ग्रह'' कहलाता है। अर्थात् जिस स्वर से राग आरम्भ किया जाता है उसे उस राग का 'ग्रहस्वर' कहते हैं।

2. **अंश–**आधार स्वर को अंश स्वर कहा जाता है। वर्तमान समय में राग के वादी स्वर को ही अंश स्वर समझना चाहिये। यह एक राग में एक ही हो सकता है।

3. **न्यास–**राग की समाप्ति जिस स्वर पर होती है, उसे न्यास स्वर कहा जाता है। वर्तमान समय में राग के विस्तार करते समय विश्रान्ति के स्वर न्यास स्वर कहलाते हैं।

4. अपन्यास–राग का विस्तार करते समय आलाप–तान आदि करते हुए जिन स्वरों पर रुक कर साँस ली जाती है या यूँ कहें कि बीच–बीच में जिन स्वरों पर अल्प रूकाव होता है, वे अपन्यास स्वर कहलाते हैं।

5. **अल्पत्व 6. बहुत्व–**ये दोनों शब्द एक दूसरे के पूरक होते हुए भी अलग–अलग हैं। अतः दोनों को एक साथ ही समझने में सुविधा भी होती है। राग में प्रयुक्त होने वाले सभी स्वर समान मात्रा में प्रयुक्त नहीं होते हैं। कुछ स्वरों पर कम और कुछ स्वरों पर अधिक रूकने से यह क्रिया सम्पन्न होती है। यहाँ कम प्रयोग होने वाले स्वरों का अल्पत्व और अधिक प्रयोग होने वाले स्वरों का बहुत्व कहलाता है। अर्थात् किसी स्वर को लांघना या न रूकना भी अल्पत्व और न लांघना या अधिक रूकना भी बहुत्व कहलाता है।

7. औडव 8. षाडव–किसी भी राग में अधिक से अधिक सात स्वरों का प्रयोग होता है वे राग सम्पूर्ण राग कहलाते हैं। राग में किन्हीं दो स्वरों के वर्जित होने पर शेष पँच स्वरों वाला राग ''औडव राग'' कहलाता है तथा किसी एक स्वर के वर्जित होने पर शेष छैः स्वरों वाले राग को ''षाडव राग'' कहते हैं।

9. **मंद्र 10. तार–**किसी भी राग का विस्तार कभी मुख्य रूप से मध्य सप्तक में होता है। मंद और तार में किसी राग का विस्तार किस स्वर तक हो इसके लिये मंद्र और तार सप्तक के स्वरों का निर्धारण मंद्र व तार कहलाता है।

आजकल प्राचीन रागों के लक्षण ज्यों के त्यों प्रचार में नहीं हैं। पण्डित भातखण्डे जी ने रागों के 41 सिद्धान्तों का वर्णन किया था जिसका सारांश 15 राग लक्षणों में दिये हैं–1. हिन्दुस्तानी संगीत में विलावल थाट के स्वर शुद्ध माने जाते हैं। अतः विकृत स्वर उसी के आधार पर निर्धारित होते हैं। जबकि दक्षिण में विलावल के स्थान पर 'मुखारी' शुद्ध सप्तक है।

2. सभी रागों का आधार षड़ज होने के कारण यह स्वर किसी भी राग में वर्जित नहीं होता है। इसलिये इसे अविनाशी स्वर भी कह सकते हैं।

3. राग के स्वर किसी एक थाट में लगने वाले स्वरों में होना चाहिये। जिन रागों में स्वर मान्य दस थाटों के अनुसार नहीं हैं, वह मिश्रित राग हैं।

4. राग में वादी का सर्वाधिक महत्व है। जिन रागों का वादी स्वर पूर्वाङ्ग में होता है वे दिन में 12 से रात के 12 बजे तक गाये बजाये जाते हैं। ऐसे राग मंद्र मध्य सप्तक प्रधान होते हैं। इनकी प्रकृति भी गम्भीर होती है। उत्तरांगवादी राग रात के 12 बजे से दोपहर के 12 बजे तक गाये बजाये जाते हैं। इनका विस्तार मध्य–तार सप्तक में अधिक होता है और इनकी प्रकृति चंचल मानी जाती है।

5. जिस राग में किसी स्वर के शुद्ध और विकृत दोनों रूप प्रयुक्त होते हैं। आरोह में तीव्र और अवरोह में कोमल अथवा एक के बाद एक स्वर को दोनों रूप प्रयुक्त होते हैं जैसे ललित पंचम आदि ये अपवाद हैं।

6. राग में कम से कम पाँच स्वर होने आवश्यक है। पाँच स्वरों से कम की तान मानी जाती है राग नहीं। एक मत के अनुसार पाँच स्वरों से कम वाले 'मार्गी' राग तथा पाँच, छह, सात स्वरों वाले 'देशी' राग होते हैं।

7. राग का रंजक होना अनिवार्य है।

8. किसी भी राग में म और प दोनों एक साथ वर्जित नहीं होते हैं।

9. प्रत्येक राग का आरोह अवरोह निश्चित होने से उस राग की सम्पूर्ण, षडव या औडव जाति निर्धारित होती है। इन तीन जातियों की पुनः प्रत्येक की 3, उप जातियाँ होने से ($3 \times 3 = 9$) जातियाँ बनती हैं।

10. प्रत्येक राग की अपनी विशेष स्वर संगतियाँ होती हैं। जिससे उस राग का स्वरूप स्पष्ट होता है। उसे मुख्यांग या पकड़ कहते हैं।